शोध मंथन, 2017 ISSN: (P): 0976-5255, (e) : 2454-339X, Impact Factor 3.8942 (ICRJIFR)
UGC Aproved Journal No. 40908

प्रेमचंद के उपन्यासों में वर्ण्यणत साम्प्रदायिक समस्याएँ : एक अवलोकन

डा० विश्वम्भर पाण्डेय
एसोसिऐट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
सनातन धर्म महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर

सारांश

प्रेमचंद के समय में साम्प्रदायिक शक्तियाँ उपनिवेशवाद के कुचक्र में फँसकर नये–नये रूप में सामने आने लगी थीं। जिसकी झलक उनके कथा–साहित्य में ही नहीं उनके निबंधों में भी यत्र–तत्र मिल जाती है। प्रेमचंद 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि' आदि उपन्यासों में साम्प्रदायिकता को हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख शत्रु के रूप में देखते थे। अपने एक लेख में वे इसके घातक परिणाम की ओर इंगित करते हुए कहते हैं, 'यह मनोवृत्ति राष्ट्रीयता का गला घोंटने वाली है। हमें इस मनोवृत्ति का मूलोच्छेद करना पड़ेगा, अन्यथा हमारा राष्ट्र मधुर स्वप्न ही रहेगा।' हिन्दू और मुसलमान द्वारा अपनी संस्कृति को श्रेष्ठ ठहराने को भी वे एक प्रकार का दम्भ मानते थे। मुस्लिम युवक द्वारा हिन्दू लड़की का अपहरण इस कारण होता है कि कट्टर मुसलमान ऐसे अपहरण या हिन्दू लड़की से शादी को एक हजार हजों का सबाब कहकर शिक्षा देते हैं जिसकी तरफ प्रेमचंद ने इशारा किया है। प्रेमचंद नीति को धर्म समझते थे। उनकी धारणा थी कि सभी सम्प्रदायों की नीति एक–सी है, इसलिए सभी को सभी के धर्मों का आदर करना चाहिए। तभी संसार का भावी सत्य, त्याग और प्रेम के आधार पर बनेगा।

महत्वपूर्ण शब्द

साम्प्रदायिकता, राष्ट्रीयता, धर्मान्धता, संस्कृति, पुनरुत्थानवाद, सबाब।

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है:

डा० विश्वम्भर पाण्डेय,
''प्रेमचंद के उपन्यासों में वर्ण्यणत साम्प्रदायिक समस्याएँ : एक अवलोकन''
शोध मंथन,
सितम्बर 2017,
पेज सं0 229–234
http://anubooks.com/?page_id=581
Artcile No. 33

डा० विश्वम्भर पाण्डेय

प्रेमचंद के समय में साम्प्रदायिक शक्तियाँ उपनिवेशवाद के कुचक्र में फँसकर नये–नये रूप में सामने आने लगी थीं। एक सजग रचनाकार होने के नाते प्रेमचंद ने सांप्रदायिकता की जड़ को प्रत्यक्ष देखा और उसके समाधान ढूँढ़ने का प्रयास भी किया। जिसकी झलक उनके कथा–साहित्य में ही नहीं उनके निबंधों में भी यत्र–तत्र मिल जाती है। यह सांप्रदायिकता धर्म, संस्कृति, जाति और भाषा की खाल ओढ़कर लोगों में आपसी वैमनस्य पैदा करने का काम करती है। वैसे तो धर्म और राजनीति ही साम्प्रदायिकता के मूल में हैं। यदि धार्मिक और राजनीतिक विचारधारा एक–सी हो जाय तो यह अपने आप ही सूख जाएगी, किन्तु वर्चस्ववादी लोग इसे समाप्त होने देना नहीं चाहते, क्योंकि यह नहीं रहेगी तो उनकी दुकानदारी का क्या होगा। इस चीज को प्रेमचंद भलीभाँति पहचानते थे। सांप्रदायिकता के बारे में उनकी मान्यता बहुत ही व्यापक है। वे लिखते हैं। 'क्या सांप्रदायिकता उसी को कहते हैं जो धर्म और आचार पर आधारित हो। वह भी तो सांप्रदायिकता है, जो राजनीतिक सिद्धांतों पर आधारित होती है। अगर हिन्दू–मुसलमान एक दूसरे से लड़ते हैं तो क्या सोशलिस्ट और डेमोक्रेट एक–दूसरे की पूजा करते हैं? उनकी आपसी लड़ाइयाँ भी उतनी ही भयंकर, उतनी ही रक्तमय होती हैं, बल्कि उससे कुछ ज्यादा। यह विभिन्नता तो किसी न किसी रूप में उस समय तक रहेगी, जब तक एक नए युग का उदय न होगा। जब सब एक–दूसरे को भाई समझेंगे, स्वार्थ और भेद का अन्त हो जाएगा। वह समय निकट भविष्य में आता नजर नहीं आता।'[1]

प्रेमचंद साहित्य में साम्राज्यवाद विरोधी, सामंतवाद विरोधी चेतना के साथ–साथ साम्प्रदायिकता–विरोधी चेतना भी विद्यमान है। वह युग ही संक्रमण का था और उस संक्रमित वातावरण में अंग्रेजों की साम्प्रदायिक नीति खूब फल–फूल रही थी। शायद इसी कारण उनके युग के प्रायः सभी साहित्यकारों ने साम्प्रदायिकता को पहचानने की कोशिश की तथा उसका चित्रण भी अपने–अपने साहित्य में किया। प्रेमचंद 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि' आदि उपन्यासों में साम्प्रदायिकता को हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख शत्रु के रूप में देखते हैं। 'कायाकल्प' में वे लिखते हैं। सारा देश गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है, फिर भी हम अपने भाइयों की गर्दन पर छुरी फेरने से बाज नहीं आते। जिनसे लड़ना चाहिए उनके तो तलवे चाटते हैं और जिनसे गले मिलना चाहिए उनकी गर्दन दबाते हैं.....अभी एक गोरा आ जाए, तो घर में दुम दबाकर भागेंगे, उस वक्त जबान भी न खुलेगी।'[2] 'रंगभूमि' में सूरदास सोचता है कि 'बड़े आदमी सब एक होते हैं चाहें हिन्दू हो या तुर्क।' साम्प्रदायिकता को प्रेमचंद ने साम्राज्यवादियों के हाथ में जनता को उनके अधिकारों से वंचित रखने का एक अस्त्र समझा। 29 अगस्त 1932 को 'जागरण' के सम्पादकीय में उन्होंने इसके विरुद्ध इस प्रकार लिखा है–'यह मनोवृत्ति राष्ट्रीयता का गला घोंटने वाली है। हमें इस मनोवृत्ति का मूलोच्छेद करना पड़ेगा, अन्यथा हमारा राष्ट्र मधुर स्वप्न ही रहेगा।'[3]

प्रेमचंद जानते थे कि मुल्ला और पंडित अपने निहित स्वार्थों के वशीभूत होकर सांप्रदायिक उन्माद भड़का रहे हैं। इसलिए उन्होंने सांप्रदायिक सौहार्द्र के लिए विश्वास, धैर्य, सहिष्णुता, सेवा आदि पर सर्वाधिक महत्त्व दिया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में विजयी होने के लिए सांप्रदायिक संग्राम पर विजय हासिल करना सबसे पहले जरूरी था। इसलिए

प्रेमचंद ने भाईचारा, शांति, मैत्री एवं प्रीति को प्रोत्साहित करना चाहा। प्रेमचंद इस बात से अनभिज्ञ नहीं थे कि एक तरफ हमारी लड़ाई साम्राज्यवादी ताकतों से है, तो दूसरी तरफ साम्प्रदायवादियों से। जहाँ एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय से इतना सशंक हो वहाँ राष्ट्रीयता क्योंकर पनपेगी। जहाँ मुसलमानों को कुछ अधिकार मिल जाने पर हिन्दू हाय–तौबा करने लगता है और हिन्दुओं को कुछ अधिकार मिल जाए तो मुसलमान भी पीछे नहीं रहता। अर्थात् मौखिक कितना ही सौहार्द्र दिखाए अधिकारों में तनिक भी घट–बढ़ नहीं होनी चाहिए। क्या यह सत्य नहीं कि जब कोई साम्प्रदायिक दंगा भड़क उठता है तो हमारी प्राथमिकता हताहतों को जानने की होती है कि कितने मुसलमान मरे। यदि उनकी संख्या अपेक्षया अधिक होती है तो एक भारी सकून मिलता है और यदि कम हुई अर्थात् हिन्दू हताहत ज्यादा हुए तो प्रतिकार की ज्वाला हमारे अंतर में सुलग उठती है। क्या ऐसी साम्प्रदायिकता के रहते राष्ट्र–प्रेम और राष्ट्र–मुक्ति सम्भव है? इन्हीं सब बिन्दुओं से प्रेमचंद बार–बार टकराते रहे। सम्प्रदायवादियों के मुख्य अस्त्र पुनरुत्थानवाद का भी उन्होंने भंडाफोड़ किया। 'साम्प्रदायिकता सदैव संस्कृति की दुहाई दिया करती है। उसे अपने असली रूप में निकलते शायद लज्जा आती है, इसलिए वह गधे की भाँति जो सिंह की खाल ओढ़कर आती है। हिन्दू अपनी संस्कृति को कयामत तक सुरक्षित रखना चाहता है, मुसलमान अपनी संस्कृति को। दोनों अपनी–अपनी संस्कृति को अछूती समझ रहे हैं।'[4] हिन्दू मुसलमान को नहीं देखना चाहता और मुसलमान हिन्दू को। हिन्दुओं के मन में मुसलमानों के प्रति बुरे भाव क्यों हैं? और मुसलमानों के दिलों में हिन्दुओं के प्रति? दंगे–फसाद से दोनों ही बराबर डरते हैं। चक्रधर कहता है। 'मुसलमान फसाद से उतना ही डरते हैं जितना हिन्दू। शांति की इच्छा भी उनमें हिन्दुओं से कम नहीं है। लोगों का यह खयाल कि मुसलमान लोग हिन्दुओं पर राज करने का स्वप्न देख रहे हैं, बिल्कुल गलत है। मुसलमानों को केवल यह शंका हो गयी है कि हिन्दू उनसे पुराना बैर चुकाना चाहते हैं और उनकी हस्ती मिटा देने की फिक्र कर रहे हैं।'[5] 'कायाकल्प' केवल साम्प्रदायिक उद्देश्य से नहीं लिखा गया, किन्तु प्रेमचंद के इस प्रकार के विचार इस उपन्यास में सशक्त रूप में उभरे हैं।

पंजाब के मौलवी दीनमुहम्मद आगरे तशरीफ लाये और मुसलमानों के एक बड़े जलसे में गाय की कुरबानी करने का निर्णय लिया गया, हिन्दुओं में खलबली मच गयी। यशोदानन्दन के मुहल्ले में इससे पहले कभी कुरबानी नहीं हुई। ख्वाजा मुहम्मद यह स्वीकार करते हैं किन्तु यह नई रस्म निकाली गई कि हिन्दू अपने अधिकारों के सामने मुसलमानों के जज्बात की परवाह नहीं करते, फिर मुसलमान क्यों करे। जब मुसलमानों की शुद्धि करने का हिन्दुओं को पूरा अधिकार प्राप्त है, यद्यपि पाँच सौ वर्षों के भीतर इसका एक उदाहरण भी नहीं मिलता, फिर मुसलमानों ने कुरबानी की नई रस्म निकाल ही ली, तो इसमें आपत्ति क्या है।[6] यह ख्वाजा मुहम्मद के विचार नहीं हैं यह उन्हीं प्रेमचंद के विचार हैं जो शुद्धि के जबरदस्त विरोधी थे इसलिए इस समस्या का समाधान यशोदानन्दन नहीं कर सके। समाधान खुद प्रेमचंद ने चक्रधर बनकर किया है। गोरक्षा, यशोदानन्दन का ही धर्म नहीं था, चक्रधर का भी धर्म था, किन्तु चक्रधर में कोरी धर्मान्धता नहीं थी। चक्रधर की नजरों में अहिंसा का नियम गौओं ही

के लिए नहीं मनुष्यों के लिए भी तो है।[7] फिर एक गाय की कुरबानी बचाने के लिए सैकड़ों मनुष्यों की कुरबानी दी जाय? चक्रधर की इस सूझ–बूझ का परिणाम यह हुआ कि न केवल गाय आजाद कर दी गयी बल्कि तमाम मुसलमान चक्रधर की हिम्मत और जवाँमर्दी की तारीफ करते हुए चले गए। गाय को लेकर प्रेमचंद के विचार बिल्कुल ही निराले हैं– 'हदुस्तान जैसे कृषिप्रधान देश के लिए गाय का होना एक वरदान है मगर आर्थिक दृष्टि के अलावा इसका कोई महत्त्व नहीं है।'[8] किन्तु चक्रधर के आगरे जाने के बाद आगरे के हिन्दू–मुसलमान फिर एक होकर न रह सके। रहते भी कैसे? वहाँ कोई चक्रधर जैसा व्यक्ति न था। ले–देकर एक वागीश्वरी थी, जिसके विचारों में चक्रधर की कुछ–कुछ झलक विद्यमान थी। अपने पति की मृत्यु पर तथा बेटी के अपहरण पर वह रोती हुई कहती है। 'नित्य समझाती रही, इन झगड़ों में न पड़ो। न मुसलमान के लिए दूसरा कोई ठौर–ठिकाना है, न हिन्दू के लिए। दोनों इसी देश में रहेंगे और इसी देश में मरेंगे। फिर आपस में क्यों लड़े मरते हो, क्यों एक–दूसरे को निगल जाने पर तुले हो? न तुम्हारे निगले वो निगले जाएँगे, न उनके निगले तुम निगले जाओगे, मिल–जुलकर रहो, उन्हें बड़े होकर रहने दो, तुम छोटे ही होकर रहो। मगर मेरी कौन सुनता है। स्त्रियाँ तो पागल हो जाती हैं यूँ ही भूँका करती हैं।'[9]

वागीश्वरी को विश्वास था कि आगरे में अब यदि कोई उसका हितैषी है तो वह ख्वाजा मुहम्मद ही हैं। जभी तो वह अहिल्या की तलाश के लिए लोगों के लिए ख्वाजा के लिए भेजती है और कहती है। 'तुम्हें लाज नहीं आती? जिस लड़की को बेटी बनाकर मेरी गोद में सौंपा था, जिसके विवाह पर पाँच हजार खर्च करने वाले थे, उसकी उन्हीं के पिछलगुओं के हाथों यह दुर्गति।'[10] और कोई होता तो फँसादी और दुष्ट दंगाई मुसलमानों को इस अवसर पर भला–बुरा कहता, कोसता, गालियाँ देता, पर वागीश्वरी ने यह सब कुछ नहीं किया।

दूसरी ओर ख्वाजा साहब यशोदानन्दन की लाश पर बैठे हुए आँसू बहा रहे थे। अहिल्या के उठ जाने का समाचार मिला तो गुस्से से पागल हो गये। कहने लगे। 'कलामे मजीद की कसम, जब तक अहिल्या का पता न लगा लूँगा, मुझे दाना–पानी हराम है।.....सारे शहर की खाक छान डालूँगा, एक–एक घर में जाकर देखूँगा, अगर किसी बेदीन बदमाश ने मार नहीं डाला, तो जरूर खोज निकालूँगा। हाय मेरी बच्ची।'[11] मजेदार बात यह है कि यह 'बेदीन बदमाश' कोई और नहीं था, स्वयं ख्वाजा मुहम्मद का अपना बेटा था, जिसने ख्वाजा साहब के पुरजोर फतवे' जो मुसलमान किसी हिन्दू औरत को निकाल ले जाय उसे एक हजार हजों का सबाब होगा'[12] के मुताबिक, अहिल्या को निकालकर एक हजार हजों का सबाब कमाया था।

ख्वाजा साहब के फतवे ने अकेले यशोदा के ही घर में अपना जादू नहीं दिखलाया होगा अपितु अनेक अहिल्याएँ इस घटना की शिकार हुई होंगी। तमाम कोशिशों के बावजूद भी ख्वाजा साहब अहिल्या को ढूँढ़ निकालने में असफल रहे। उन्हें उसकी भनक तक न लगी और जब पता चला तो उन्हें सबसे ज्यादा इस बात का दुख हुआ कि, 'कमबख्त जानता था कि अहिल्या मेरी लड़की है। फिर भी अपनी हरकत से बाज न आया।'[13] गोया यदि अहिल्या ख्वाजा की बेटी (मुँह बोली) न होती तो उनके बेटे ने जो किया सब जायज था। सच यह है कि ख्वाजा साहब का

चरित्र बहुत ऊँचा नहीं उठ सका है। भले ही वह यशोदानन्दन की लाश पर छः धारों वाली आँसू टपकाये हों। उनमें वे तमाम मानवीय दुर्बलताएँ विद्यमान हैं जो दूसरों में भी पाई जाती हैं।

प्रेमचंद ने अपने प्रारंभिक उपन्यास 'सेवासदन' से ही साम्प्रदायिकता के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। वेश्याओं को शहर के मुख्य स्थान से हटाकर बस्ती से दूर रखे जाने के मसले पर बखेड़ा खड़ा हुआ। हदू एवं मुसलमान वेश्याओं को अलग–अलग स्थानों पर रखने की बात पर भी समस्या खड़ी हुई। सैयद शफाकत अली, जैसे पात्रों के साथ पद्म सह, प्रोफेसर रमेशदत्त, सेठ बलभद्र दास, अनिरुद्ध सह, सदन सह आदि की असलियत से प्रेमचंद वाकिफ थे। इस संदर्भ में रामविलास शर्मा का कहना है– 'प्रेमचंद यह दिखलाते हैं कि नारी की पराधीनता और वेश्यावृत्ति हदुओं और मुसलमान दोनों में है। वह इस्लामी संस्कृति और हिदू संस्कृति का डंका बजानेवालों से कहते हैं – देखो, यह है तुम्हारी संस्कृति जो हिदू और मुसलमान दोनों ही धर्मों की स्त्रियों से वेश्यावृत्ति कराते है।'[14]

साम्प्रदायिकता के नग्न छाया–चित्र से आँख मूँदकर लिखना प्रेमचंद के लिए संभव नहीं था। इसलिए जब प्रेमचंद ने 'कायाकल्प' लिखना शुरू किया तो सबसे पहले उनका ध्यान इसी तरफ गया, जो स्वाभाविक भी था। प्रेमचंद का मन चक्रधर के शब्दों में उमड़ पड़ा। 'मैं तो नीति को धर्म समझता हूँ और सभी सम्प्रदायों की नीति एक–सी है। अगर अंतर है तो बहुत थोड़ा। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध सभी सत्कर्म और सद्विचार की शिक्षा देते हैं, हमें कृष्ण, राम, ईसा, मुहम्मद, बुद्ध सभी महात्माओं का समान आदर करना चाहिए।.. ....बुरे हिन्दू से अच्छा मुसलमान उतना ही अच्छा है जितना बुरे मुसलमान से अच्छा हिन्दू।. .....संसार का भावी सत्य, त्याग और प्रेम के आधार पर बनेगा।'[15] प्रेमचंद ने हमेशा ही उन प्रयत्नों का जोरदार स्वागत किया जो राजनीतिक क्षेत्र में और सामाजिक क्षेत्र में साम्प्रदायिकता मिटाने के लिए किये जाते थे। वह जानते थे कि सम्प्रदायिकता साम्राज्यवाद के प्रोत्साहन से सामंती शोषण को कायम रखने का प्रतिक्रियावादी लोगों के हाथों में अस्त्र है। इसलिए उन्होंने हिन्दू सम्प्रदायवादियों और उनकी सामंती विचारधारा और संस्थानों पर निर्मम आक्रमण किया जिससे कभी–कभी उन्हें ब्राह्मण विरोधी भी कहा गया। प्रेमचंद इसका उत्तर देते हुए कहते हैं। 'हिन्दू जाति का सबसे घृणित, कोढ़, सबसे लज्जाजनक कलंक, यही टके पंथी दल है। जो एक विशाल जोंक की भाँति उसका खून चूस रहा है। हमारी राष्ट्रीयता के मार्ग में यही सबसे बड़ी बाधा है। हमारा आदर्श सदैव यह रहा है कि जहाँ धूर्तता और पाखण्ड और सबलों द्वारा निर्बलों पर अत्याचार देखो, उसको समाज के सामने रखो, चाहे हिन्दू हो, पंडित हो, बाबू हो, मुसलमान हो, या कोई हो.....हमारा स्वराज केवल विदेशी जुए से अपने को मुक्त करना नहीं है, बल्कि सामाजिक जुए से भी, इस पाखण्डी जुए से भी, जो विदेशी शासन से कहीं अधिक घातक है।'[16]

इस प्रकार प्रेमचंद द्वारा सम्प्रदायवाद के विरुद्ध यह संघर्ष भावी धर्म के कुसंस्कारों को मिटाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। वे यह मानते थे कि संभव है प्रेम पर आधारित धर्म की स्थापना हो पर यदि नहीं भी हो तो एक बेहतर इंसान जरूर बनना चाहिए जो इन सबसे ऊपर है।

संदर्भ

1. प्रेमचंद, विविध प्रसंग, भाग–2, समझौता या हार, पृ. 403
2. प्रेमचंद, कायाकल्प, पृ. 108
3. विविध प्रसंग, पृ. 381
4. वही, पृ. 408
5. प्रेमचंद, कायाकल्प, पृ. 49
6. वही, पृ. 30
7. वही, पृ. 31
8. प्रेमचंद, विविध प्रसंग, भाग–2, पृ. 354
9. प्रेमचंद, कायाकल्प, पृ. 208
10. वही, पृ. 208
11. वही, पृ. 209
12. वही, पृ. 210
13. वही, पृ. 212
14. शर्मा रामविलास, प्रेमचंद और उनका युग, पृ. 37
15. प्रेमचंद, कायाकल्प, पृ. 182
16. प्रेमचंद, विविध प्रसंग, भाग–2, पृ. 475